ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(3): 943-945
www.allresearchjournal.com
Received: 03-01-2017
Accepted: 16-02-2017

डॉ. कविता राजन
एसोसिएट प्रोफेसर सत्यवती
महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

Corresponding Author:
डॉ. कविता राजन
एसोसिएट प्रोफेसर सत्यवती
महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

साहित्य और राजनीति का संबंध

डॉ. कविता राजन

प्रस्तावना

साहित्य और राजनीति दोनों वृहत्तर सामाजिक संरचना के अंग हैं और वे जीवन से गहरे रूप में संपृक्त होते हैं। राजनीति, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि सभी अनुशासनों में समाज की गहरी छाप दिखाई देती है। साहित्य शब्दों, बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति है। साहित्यकार समाज से प्राप्त अनुभव को अपनी प्रतिभा द्वारा 'सौंदर्य का संस्कार' देकर कलात्मक रूप में व्यक्त करता है। साहित्य अपने कलात्मक वैशिष्ट्य के कारण ही समाज से जुड़ा होने पर भी विशिष्ट होता है। उसी प्रकार राजनीति व्यक्ति के अनुभव का कोई ऐसा अंश नहीं है जो उसके शेष अनुभवों से अलग हो, अपितु उसके संपूर्ण अनुभव-जगत का एक विशिष्ट व बुनियादी पक्ष है। परन्तु व्यक्ति के व्यापक अनुभव का अंश होने के बावजूद भी स्वरूपगत विशिष्टता के कारण उनमें पारस्परिक भिन्नता पाई जाती है।

राजनीति एक बुनियादी मानव क्रिया-कलाप है। वह एक व्यापक सामाजिक प्रक्रिया है जो सामाजिक जीवन के अनेक स्तरों पर चलती रहती है। वह ऐसी प्रक्रिया है जो सभी समूहों, समुदायों, समाजों और संस्थाओं में व्याप्त है। यह उत्पादन और पुनरूत्पादन के सभी संबंधों, संस्थाओं और ढाँचों में निहित है। जीवन के प्रत्येक क्षण में लोगों को राजनीति का सामना करना पड़ता है। आज के समय में राजनीति जीवन की सबसे बड़ी संचालक और नियामक शक्ति तथा व्यक्ति एवं समाज के विकास का साधन है। राजनीति का अर्थ मात्र पाँचसाला चुनाव और सरकार बनाने तथा गिराने अथवा किसी नेता के हाथ में निर्णय की ताकत देने से नहीं है वरन् वह परिवर्तन का एक जरिया है। रजनी कोठारी के अनुसार, फ्राजनीति कई तरह की होती है। एक राजनीतिक प्रक्रिया वह होती है जिसके जरिये परिवर्तन लाया जाता है, जिसके जरिये विचारों का सृजन किया जाता है, जिसके जरिये अव्यावहारिक लगने वाले स्वप्नदर्शी विचारों को धरती पर उतारा जाता है, जिसके जरिये क्रांतियों का आयोजन किया जाता है। ऐसी प्रक्रिया जब चलती है तो उसके पीछे की राजनीति में एक नैतिक तत्व होता है, एक मूल्य प्रणाली होती है जो सारी दुनिया के लोगों पर असर डालती है।[1]
स्वतंत्रता के पूर्व की राजनीति इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जिसका उद्देश्य वृहत्तर मानव मूल्यों की स्थापना था। त्याग, सेवा, ईमानदारी आदि उसके नैतिक मूल्य थे।
सत्ता की स्थापना से जुड़कर राजनीति एक तरफ जहाँ शोषक वर्ग का उपकरण बनती है वहीं दूसरी तरफ वंचितों और शोषितों की मुक्ति का अस्त्र। राजनीतिक सत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर शोषक वर्ग-शोषण और यथास्थिति को बनाये रखना चाहता है और शोषित वर्ग अपने शोषण से छुटकारा पाने के लिए व्यवस्था परिवर्तन तथा कल्याणकारी एवं जनतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के लिए संघर्ष करता है। दोनों की ही अपनी-अपनी राजनीति होती है। परन्तु सही राजनीति वही है जिसका उद्देश्य लोगों का विकास और मानव मूल्यों की स्थापना होता है। जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संचालित होती है। फ्मेरे लिए वह राजनीति ही श्रेयस्कर है जो सामाजिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करती हो, उसे बदलती हो। जब राजनीति ऐसा करेगी तो वह लोगों के दिल-दिमाग को बदलेगी। ऐसी राजनीति पर नैतिक और मूल्यगत

आयामों का वर्चस्व होगा, न कि अल्पकालीन लक्ष्यों और सत्ता-संबंधी लाभों का।[2]

जाहिर है सही राजनीति वही हो सकती है जिसका लक्ष्य सामाजिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हो जिसमें व्यक्ति के विकास की संभावनाओं के साकार होने के अधिकतम अवसर उपलब्ध हों।

साहित्य शब्द और अर्थ के समन्वित सौन्दर्य से निर्मित एक ऐसी लोकमंगलकारी रचना है, जो रचनाकार के भावों, विचारों या आदर्शों को पाठक या समाज तक संप्रेषित करती है। साहित्यकार रचना के माध्यम से उन्नतर मानव मूल्यों की स्थाना का प्रयास करता है। वह जीवन की वास्तविकताओं और संघर्षों को रचना में अभिव्यक्त करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते साहित्यकार राजनीतिक प्राणी भी है। जीवन और समाज से निरपेक्ष होकर वह रचना नहीं करता है बल्कि जीवन संघर्ष में शामिल होता है। आज के समय में कुछ भी अराजनीतिक नहीं है। सब कुछ व्यापक सामाजिक जीवन से जुडे हैं और साहित्य तथा राजनीति भी उससे संबंधित हैं। अतः साहित्य और साहित्यकार राजनीति से अलग नहीं हो सकते। हरिशंकर परसाई के अनुसार, फ्राजनीति-सिद्धान्त और व्यवहार की - हमारे जीवन का एक अंग है। उससे नपफ़रत करना बेवकूपफ़ी है। राजनीति से लेखक को दूर रखने की बात वही करते हैं जिनके निहित स्वार्थ हैं, जो डरते हैं कि कहीं लोग हमें समझ न जायें। मैंने पहले ही कहा है कि राजनीति को नकारना भी एक राजनीति है।[3] चूंकि साहित्यकार एक सामाजिक कार्य करता है। इसलिए सही-गलत, उचित-अनुचित और अच्छे-बुरे के बीच भेद करने की समझ उसके पास होनी चाहिए। उसका दायित्व होता है कि सही पक्ष का चुनाव कर वह मानवता के हित के लिए उसे आगे बढ़ाये।

साहित्य कोई स्वायत्त और संप्रभुतासंपन्न स्वतंत्र द्वीप नहीं होता है। वह समाज का उत्पादन होता है लेकिन समाज का अनुकरण मात्र नहीं बल्कि रचनात्मक कृति होता है। साहित्य में रचनाकार की जीवन दृष्टि अभिव्यक्त होती है और उसके निर्माण में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों का योगदान होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, फ्प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है --- जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनैतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है।[4] अतः साहित्यकार चाहे सक्रिय राजनीति में भाग न ले, पर वह अराजनीतिक नहीं हो सकता है। स्वयं को राजनीति से काटकर वह समाज के वास्तविक और पूर्ण रूप का चित्रण नहीं कर सकता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है, कि फ्हमें जीवन के हर क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए साहित्य चाहिए-साहित्य जो मनुष्य-मात्र की मंगल-भावना से लिखा गया हो और जीवन के प्रति एक सुप्रतिष्ठित दृष्टि पर आधारित हो।[5] आज के समय में जब राजनीति सबसे बड़ी नियामक शक्ति बन गई है तो राजनीति को दरकिनार करके जीवन के प्रति एक सुप्रतिष्ठित और मुकम्मल दृष्टि का निर्माण अंसभव है। वस्तुतः जरूरत है राजनीति और सही राजनीति के बीच फर्क करने की। सही राजनीति भी व्यापक मानवता की स्थापना के लक्ष्य को लेकर कार्य करती है और साहित्य का उद्देश्य भी मानवता के परिप्रेक्ष्य को स्थापित करना होता है। फ्हमारी भाषा, हमारा साहित्य हमारी राजनीति-सब कुछ का उद्देश्य यही हो सकता है कि इनकी दुर्गतियों से बचाकर किस प्रकार मनुष्यता के आसन पर बैठाया जाय।[6]

कुछ लोग राजनीति के कल्याणकारी कार्यों को दरकिनार करते हुए साहित्य को उससे बिल्कुल अलग रखने की हिमायत करते हैं। ऐसा करके वे राजनीति का नहीं वरन् साहित्य का अहित कर रहे होते हैं। साहित्य किसी से कटकर समृद्ध नहीं होता बल्कि वह समावेशी होता है और सबके गुणों को अपने में समाहित करके ही महान बन सकता है। ऐसे में उसे राजनीति या ज्ञान-विज्ञान के अन्य अनुशासनों से अलग रखना, उसका अहित ही करना है और साथ ही मानवता का भी। मुक्तिबोध राजनीति के कल्याणकारी पक्ष को अस्वीकार करने और सहित्य को उससे दूर रखने की सलाह को मूढ़ता और अज्ञानता की संज्ञा देते हैं। फ्सक्रिय राजनीति से अलग रहना एक बात है, किन्तु अपनी अज्ञता के वशीभूत होकर राजनीति के कल्याणकारी धर्म से इन्कार करना दूसरी बात है, और, राजनीतिक कल्याणकारी दृष्टि से, राजनीति के क्षेत्र में काम करनेवाली हीन प्रवृत्तियों की आलोचना करना तीसरी बात है। दुनिया में महात्मा गांधी, पण्डित नेहरू, अब्राहम लिंकन और लेनिन से लेकर उनके अनेक बुद्धिमान बहादुर अनुयायी आज भी दुनिया में किसी लक्ष्य के लिए मर-खप रहे हैं। इस तथ्य को और इस मानव-दृश्य को भूल जाना खतरनाक मूढ़ता के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[7]

राजनीति जीवन का अंग है और साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति। दोनों का ही आधार मनुष्य और उसका जीवन है। इसलिए दोनों स्वतंत्र होने के साथ ही परस्पर संबंधित भी हैं। साहित्य और राजनीति दोनों अपने बुनियादी नैतिक अर्थों में मानवता और मनुष्य की मुक्ति के लिए प्रयासरत होता है। मुक्ति अकेले के द्वारा संभव नहीं है बल्कि इसके लिए सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता होती है। अतः साहित्य को अपनी स्वतंत्रता और अक्षुण्णता को बनाए रखकर राजनीति के साथ सहयोग का संबंध स्थापित करना चाहिए। साहित्य राजनीति से कटकर नहीं बल्कि दोनों के संबंध को सचेत रूप में समझकर ही सार्थक हो सकता है। उसकी सार्थकता राजनीति का अनुगामी बनने में नहीं बल्कि उसका मार्गदर्शन करने में है। साहित्य राजनीति के कल्याणकारी पक्षों को समर्थन प्रदान कर सकता है और उसको एक संतुलित और सुप्रतिष्ठित दृष्टि दे सकता है। इसीलिए प्रेमचन्द ने कहा है कि फ्वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।[8] साहित्य सिर्फ राजनीति को प्रभावित ही नहीं करता बल्कि उससे प्रभावित और संपन्न भी होता है। साहित्य और राजनीति के पारस्परिक संबंध पर विचार करते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है, फ्साहित्य राजनीति का अनुचर नहीं वरन् उससे भिन्न एक स्वतंत्र देवता है और उसे पूरा अधिकार है कि जीवन के विशाल क्षेत्र में से वह अपने काम के योग्य वे सभी द्रव्य उठा ले जिन्हें राजनीति अपने काम में लाती है। अगर कार्ल मार्क्स और गांधीजी को यह अधिकार प्राप्त है कि जीवन के अवस्था-विशेष की अनुभूति से वे राजनीति के सिद्धान्त निकाल लें तो एक कवि को भी यह अधिकार सुलभ होना चाहिए कि वह ठीक उसी अवस्था की कलात्मक अनुभूति से ज्वलन्त काव्य की सृष्टि करे। अगर राजनीति अपनी शक्ति से सत्य की प्रतिमा गढ़कर तैयार कर सकती है तो साहित्य में भी इतनी सामर्थ्य है कि वह उसके मुख में भी जीभ धर दे।[9]

साहित्य और राजनीति के संबंध को विचारधारा के स्तर पर भी समझा जा सकता है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी एक विचारधारा होती है। विचारधारा लेखक को जीवन दृष्टि देती है जिससे वह सम्यक् रूप से जीवन को देख सके। लेखक अपने विचारों को अपनी रचना में व्यक्त करता है। परन्तु लेखक के विचार सतही रूप में नहीं बल्कि उसकी संरचना में संगुम्फित होने चाहिए। कार्ल मार्क्स के अनुसार, फ्सही मानाेंं में यथार्थवादी कृतियों का रचनाकार पाठक के पास अपने

विचार पांडित्यपूर्ण दर्शन झाड़कर नहीं, वरन उन विविधतापूर्ण बिम्बों के जरिये पहुँचाता है, जो अपनी कलात्मक अभिव्यंजनाओं से पाठक की चेतना और अनुभूतियों को प्रभावित करते हैं।[10] कोई भी रचना तभी सार्थक होगी जब उसमें एक सुसंपन्न जीवन-दृष्टि का संगुम्फन कलात्मकता के साथ होगा। लेखक की विचारधारा रचना में जितनी छुपी होगी, रचना उतनी ही महान होगी। एंगेल्स ने कहा है, 'रचनाकार की मान्यताएं जितनी छिपी हों? कलाकृति के लिए उतना ही अच्छा होता है।' वस्तुतः जीवन-दृष्टि और कलात्मकता का समन्वय ही साहित्य को महान बनाता है। सिर्फ विचारधारा ही हो और कलात्मकता न हो तो वह केवल प्रचार होगा। और सिर्फ शब्द-जाल की कलात्मकता हो परन्तु सुसंगत जीवन दृष्टि का अभाव हो तो भी वह साहित्य केवल कोरा शब्द जाल बनकर रह जाता है।

संदर्भ

1. रजनी कोठारी, 'भारत में राजनीतिः कल और आज', पृ. 25
2. रजनी कोठारी, 'भारत में राजनीतिः कल और आज', पृ. 25
3. हरिशंकर परसाई, 'सदाचार का तावीज़', पृ. 12
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ. 1
5. हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'अशोक के फूल', पृ. 136
6. वही, पृ. 150
7. मुक्तिबोध रचनावली-5, पृ. 426
8. प्रेमचन्द, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ. 15
9. रामधारी सिंह 'दिनकर', 'मिट्टी की ओर', पृ. 114-115
10. मार्क्स-एंगेल्स, 'साहित्य तथा कला', पृ. 30